गुरू पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्ल पन्द्रह वि0 स0 2078, 24 जुलाई 2021

वाल्यूम 5 अंक–2

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

अर्द्ध वार्षिक

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झाँसी (उ0प्र0)

पूज्य स्वामी जी अखण्डानन्द जी महाराज (पीली कोठी)

प्रार्थना

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूँ अब तेरे काज। पालन करने को आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज।।
अन्तर में स्थित रहकर मेरे बागडोर पकड़े रहना। निपट निरंकुश चंचल मन को सावधान करते रहना।।
अन्तर्यामीको अन्तःस्थित देख सशङ्कित होवे मन। पाप-वासना उठते ही हो नाश लाज से वह जल-भुन।।
जीवों का कलरव जो दिनभर सुनने में मेरे आवे। तेरा ही गुणगान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे।।
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि! तुझमें यह सारा संसार। इसी भावना से अन्तरभर मिलूँ सभी से तुझे निहार।।
प्रतिपल निज इन्द्रिय समूह से जो कुछ भी आचार करूँ। केवल तुझे रिझाने को, बस तेरा ही व्यवहार करूँ।।

आश्रम के प्रतिदिन के कार्यक्रम

प्रातःकाल 4:30 बजे से 5:30 बजे तक	-	प्रभाती ब्रह्म कीर्तन
प्रातःकाल 5:30	-	आरती
प्रातःकाल 5:35 बजे से 7:00 बजे तक	-	योगाभ्यास
प्रातःकाल 8:00 बजे से 9:00 बजे तक	-	गीता स्वाध्याय
सांयकाल 4:00 बजे से 6:00 बजे तक	-	योगवशिष्ठ महारामायण की कथा तथा सन्त महापुरूषों द्वारा वेदान्त के भजन कीर्तन व उपदेश
सांयकाल 4:00 बजे से 6:00 बजे तक	-	16 अक्टूबर से 15 अप्रैल - शीतकालीन समय
सांयकाल 3:00 बजे से 5:00 बजे तक	-	16 अप्रैल से 15 अक्टूबर - ग्रीष्कालीन समय

आश्रम के वार्षिक कार्यक्रम

गुरू पूर्णिमा (आसाढ़ सुदी पूर्णिमा)

पुण्य स्मृति बसन्त पंचमी (माघ सुदी पंचमी)

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

वाल्यूम–5 गुरू पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्ल पन्द्रह वि0स0 2078, 24 जुलाई 2021 अंक 2

स्वामी श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम के लिये प्रकाशक, मुद्रक, प्रधान सम्पादक श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा द्वारा श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, लहर देवी रोड, वेदान्त नगर, सीपरी बाजार झांसी से प्रकाशित।

– सम्पादक, श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

संस्थापक एवं संरक्षक

स्वामी हीरानन्द जी महाराज एवं

श्री आर. के. मिश्रा

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति

लहरगिर्द नालगंज

सीपरी बाजार, झांसी (उ0प्र0)

आदि सम्पादक

ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी शुकदेवानन्द जी

प्रधान सम्पादक : श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा

सम्पादक : श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

सम्पादक मण्डल :

श्रीमती कुमकुम बिसारिया

डॉ. रंजना शर्मा

श्री अरविन्द देवलिया

श्री वैभव वर्मा

प्रकाशन कार्यालय :

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

धर्मार्थ समिति लहर गिर्द, नालगंज

सीपरी बाजार, झांसी (उ0प्र0)

पिन कोड – 284003

फोन : (0510) 2360251

अर्द्धवार्षिक

मूल्य : निःशुल्क वितरण के लिये

भारत सरकार

प.सं. UPHIN/2016/73634

अनुक्रमणिका

क्रम.	विवरण	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा	3
2.	पुरोवाक्	श्री प्रमोद कुमार गुप्ता	4
3.	आशीर्वाद	युगपुरूष महामण्डलेश्वर परम पूज्य स्वामी परमानन्द गिरी जी	5
4.	परम पूज्य स्वामी सुकदेवानन्द जी का प्रवचन "प्रथम पुष्प"	संकलित	6
5.	मुमुक्षा	ब्र0 गार्गी चैतन्य	8
6.	आत्मा का सत् स्वरूप	ब्र0 राघवेन्द्र चैतन्य	11
7.	सुख–दुःख स्पृहःरहित	श्री प्रमोद कुमार गुप्ता	14
8.	मंगलमय गुरू के पद पंकज	श्री तिलक राज शर्मा	17
9.	"सुख" (काव्य)	ब्र0 राघवेन्द्र चैतन्य	17
10.	कैसे बनें आध्यात्मिक	डॉ0 रंजना शर्मा	18
11.	भगवत्कृपा प्राप्ति का प्रथम सोपान	श्रीमती कुमकुम बिसारिया	21
12.	दोष कैसे दूर हों	श्री अरविन्द देवलिया	22
13.	सुमिरन बिन मुक्ति नाहिं	श्री वैभव वर्मा	25
14.	मानव जीवन में गुरू का महत्व	पं0 वेद प्रकाश त्रिवेदी	27
15.	ज्ञान का मार्ग	श्री गौरव वर्मा	29
16.	सन्त कृपा	ठा0 लाखन सिंह तोमर	30

पाठको से निवेदन

Website:- www.akhandavedanta.com

Email:- neerajnikhra@gmail.com
diszvaibhav@gmail.com

गुरू भक्त अपनी ई–मेल पर "अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता" पत्रिका निशुल्क चाहते हैं, तो उपर्युक्त ई–मेल आईडी पर सम्पर्क करके प्राप्त कर सकते हैं।

सम्पादकीय........................

संसार के सभी प्राणी सुख की कामना रखते हैं। उनका सदैव यही प्रयत्न रहता है कि उनके सुख में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जाये। भौतिकवादी संस्कृति में विभिन्न सुविधा साधनों को एकत्र कर लेना ही सुख का आधार माना जाता है। परन्तु इंन्द्रियों को तृप्त करने से किसी को कभी आनन्द प्राप्त नहीं हुआ है। इन्द्रियों को तृप्त करने वाला सुख क्षणिक होता है। उससे कभी आत्मिक संतोष की प्राप्ति नहीं होती । विवेकहीन अज्ञानी पुरूष को सत् और असत् का ज्ञान नहीं होता है। ऐसा अज्ञानी पुरूष अभिमानी क्रोधी लोभी और द्वैषी होता है। अज्ञान से ही अनेक कामनाओं का उदय होता है। अज्ञानी पुरूष विद्या से विवाद धन से अहंकार एवं शक्ति से दूसरे को पीड़ा देता है। इसके विपरीत ज्ञानी, विवेकी, अभिमान आदि से रहित श्रमी संयमी त्यागी आत्मानुरागी सत्यानुरागी तथा सदगुरू वचनानुरागी होता है। वह अहंकार से रहित उदार चरित्रवान होता है।

ज्ञानी पुरूष आत्मानुरागी होता है। आत्मा का विवेचन करते हुये गीता में कहा गया है।

इन्द्रियाणी पराप्याहू रिन्दियेंभ्यः परं मनः।
मनतस्तु परा बुद्धिः यो बुद्धे परतस्तु सः।।

अर्थ– शरीर की समस्त इन्द्रियों सं परे मन एवं मन से परे बुद्धि है। जो बुद्धि से भी परे हो वही आत्मा है।

आत्मज्ञान प्राप्त करने हेतु मनीषियों ने चार साधन बतलाये है। आदि शंकराचार्य ने अपनी पुस्तक विवेक चुडामणि में बताया है कि इन चार साधनों के बिना सत्यस्वरूप आत्मा में स्थित होना सम्भव नहीं है।

आदौ नित्यानित्यवस्तु विवेकः परिगण्यते।
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम।।
शमादिषट्कसम्पत्तिर्गुमुक्षुत्वमिति स्फुट्म।।

अर्थ– पहला साधन नित्यानित्य वस्तु विवेक है। दुसरा लौकिक एवं पारलौकिक सुख भोग में वैराग्य होना है। तीसरा शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा एवं समाधान से 6 सम्पत्तियॉ हैं और चौथा मुमुक्षता है।

विवेकिनो विरक्तस्य शमदिगुणशालिनः।
मुमुक्षोरेव हि ब्रहमजिज्ञासायोग्यता मता।।

अर्थ– विवेक वैराग्यवान शम दमादि षट्सम्पतियुक्त और मुमुक्षत्व को जिज्ञासा से युक्त व्यक्ति ही ब्रह्म जिज्ञासा के योग्य माना गया है।

ज्ञानी पुरूष चारों साधनों से युक्त होकर सदैव ब्रह्मभाव में स्थित रहता है। यद्यपि ब्रह्म का साक्षात् निरूपण कोई भी नहीं करा सकता क्योकि यह शब्द की शक्तिवृत्ति से परे है। इसकी केवल अपरोक्ष अनुभूति ही की जा सकती है।

शिवोहम्।

राजेन्द्र कुमार मिश्रा
प्रधान संपादक

पुरोवाक्.....

मनुष्य जीवन की दुर्लभता का उल्लेख यानी बड़े भाग्य से मिलता है का उल्लेख विभिन्न आध्यात्मिक ग्रंथो में अध्ययन करने पर मिलता है। संसार में विभिन्न योनियां मात्र कर्मफल को भोगने के लिये ही होती हैं किन्तु मनुष्य योनि को जीवन मुक्ति का साधन बना सकते हैं। पूर्व जन्म के प्रारब्ध कर्म एवं संचित कर्मों के अनुसार ही जीवन मिलता है और उन्हीं से आबद्ध होकर जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में नश्वर शरीर पंचभूत में विलीन हो जाता है। किन्तु मनुष्य जीवन संचित और प्रारब्ध कर्मों से सम्बद्ध होते हुए भी मनुष्य में मन–बुद्धि की उच्च अवस्था प्राप्त होने के कारण वह विवेक से अपने वर्तमान कर्मों को शास्त्रोक्त तरीके से सम्पन्न करते हुए, तत्त्व को जानने की जिज्ञासा जाग्रत होने पर श्रद्धा समर्पण भाव से ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय सद्गुरू के पास जाकर तत्त्व बोध का ज्ञान पाकर सच्चिदानन्द ब्रह्म का साक्षात्कार कर पाता है।

तत्त्व बोध होने पर शरीर रहते हुए ही निष्काम भाव जाग्रत होने पर, सृजित निर्वासनिकता आते ही जीवन राग–द्वेष से मुक्त हो जाता है। तज्जनित विचारों का अवगुंठन न होने पर मन की निर्मलता, व्यवहार की सरलता देखने को मिलती है। ऐसी अवस्था वाले मनुष्य का शरीर ब्रह्मलीन होने पर कोई वासना ही नहीं रहने के कारण पुनश्च जन्म लेने का क्रम ही समाप्त हो जाता है, सरल शब्दों में कहें तो उसकी जन्म–मरण चक्र से मुक्ति हो जाती है।

"पुनरपि जननम् पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।"

जीवित अवस्था में विचारों की निर्द्वंदता एवं राग–द्वेष से मुक्त जीवन को पाकर, इसी जीवन में जीते जी शरीर रहते हुए ही मुक्त अवस्था से सृजित परमानन्द की अनुभूति प्राप्त करता है। ऐसे मनुष्य का शरीर न रहने पर उसके आत्म चेतन तत्त्व का ब्रह्म चेतन में विलीनीकरण हो जाता है।

व्यवहारिक तथ्य तो यह है कि सामान्य रूप में तो यही कहा जायेगा कि जीव का शरीर छूटने पर पुनर्जन्म होता है। किन्तु निर्वासनिकता को प्राप्त करने वाले महापुरूषों के संदर्भ में उपर्युक्त कथन सत्य सिद्ध नहीं होता।

इस पत्रिका का उद्देश्य यही है कि विभिन्न शब्द रश्मियों को संजोकर सुधि पाठकों को ऐसा पुन्ज उपलब्ध हो सके जो कि महापुरूषों द्वारा वर्णित निर्वासनिकता के मार्ग को प्रशस्त करे।

हमारा प्रयास है कि गुरूदेव के बताये हुए मार्ग पर चलने में यह पत्रिका आपकी सहायक सिद्ध हो।

प्रमोद कुमार गुप्ता
सम्पादक

युगपुरूष जी का आशीर्वाद

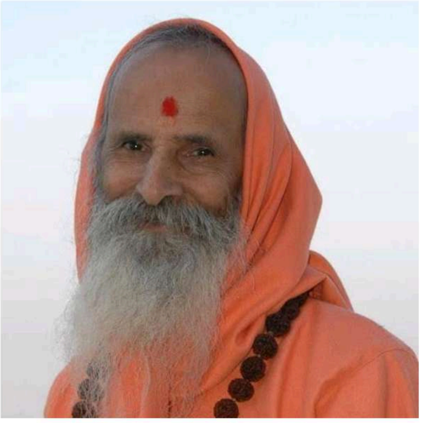

ब्रह्मलीन स्वामी विश्वम्भरानन्द जी मेरे गुरूभाई थे, बड़े विरक्त और निष्ठावान सन्त थे। वो और हम गुरूदेव की रोटियां बनाते रहे, भोजन की सेवा करते रहे। उनके यहाँ से पत्रिका भी निकलती है और कल्याण के लिये अनेक रास्ते नहीं हैं, एक ही रास्ता है और वो है आत्मा का ब्रह्म रूप से विज्ञान। यही हमारे गुरूदेव ने बताया, यही हमारे गुरूभाई बताते थे, वही हम बताते हैं।

उनका वार्षिक कार्यक्रम भी होता है, उनकी पत्रिका भी निकलती है, उसको पढ़ें। आश्रम की सेवा करें, सन्तों से जुड़े रहें और गुरूपूर्णिमा भी झाँसी आश्रम में मनायी जाती है, अन्य जगह भी मनायी जाती होगी मुझे इतना नहीं पता, पर यह मालूम है कि उनका गुना में भी आश्रम है।

इस तरह से उन्होंने थोड़े समय में बहुत काम किये हैं और आप लोग भी उस काम को बढ़ाऐं क्योंकि और सब कुछ तो अनेकों हैं, पर कल्याण का रास्ता एक ही है सत्संग, स्वाध्याय, स्वरूप का विज्ञान। आप लोग कार्यक्रम में भी भाग लें, पत्रिका के भी सदस्य बनें—पढ़ें और गुरूओं के काम को भी बढ़ाना। जैसे आप अपने परिवार के काम को बढ़ाते हो ऐसे ही गुरूओं के काम को बढ़ाना यह बहुत बड़ा परोपकार है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

युगपुरूष महामण्डलेश्वर परम पूज्य
स्वामी परमानन्द गिरी जी महाराज

परम पूज्यनीय स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी का योग शिविर में प्रवचन– प्रथम पुष्प

सृष्टि में चार प्रकार के मनुष्य हुआ करते हैं। प्रथम पामर अथवा मूढ द्वितीय विषयी तृतीय जिज्ञासु एवं चतुर्थ प्रकार के मनुष्य ज्ञानी अथवा सिद्ध महापुरूष होते हैं। प्रथम प्रकार के पामर मनुष्यों को संसार में केवल पेट भरने एवं परिवार वृद्धि करने के अतिरिक्त उन्हें न धर्म में रूचि होती है न ही अपने राष्ट्र से कोई मतलब होता है।

द्वितीय प्रकार के मनुष्य हैं जो केवल अपने संसार को ही सुखी बनाकर रखना चाहते हैं।ऐसा व्यक्ति ईश्वर को भी मानता है एवं ईश्वर से अपने संसार की समृद्धि चाहता है। वह वेदों में बताए गये सकाम कार्यों में ही विश्वास करता है।

तीसरी श्रेणी जिज्ञासु मनुष्यों की होती है जो विचार करते हैं कि मैं कौन हूँ यह संसार किसने बनाया ईश्वर क्या है जीव क्या है इस संसार चक्र का संचालन कैसे होता है इत्यादि।

उपनिषद में इस प्रकार के जिज्ञासुओं से सम्बद्ध अनेक कथानक मिलते है। वह गुरू और शिष्य के संवाद के रूप में उपनिषदों में दिये गये हैं। जैसे केन उपनिषद् में शिष्य गुरू से पूछता है–

ॐ केनेषिंत पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथम प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।।

संसार में प्रथम तो मनुष्य होना दुर्लभ है और मनुष्य योनि पाकर तत्त्व का जिज्ञासु होना और भी दुर्लभ है तथा तब तत्त्व का उपदेशक गुरू तो पाना अत्यंत दुर्लभ है।

वह शिष्य भाग्यशाली है जिनको तत्त्वज्ञ गुरू मिले हैं तथा वह गुरू भी भाग्यशाली है जिनको तत्त्व जिज्ञासु शिष्य प्राप्त है। वास्तव में वासना रहित शुद्ध अन्तःकरण में जिज्ञासा होती है। मनुष्य जाग्रत अवस्था में पंच इंन्द्रियों के द्वारा संसार में व्यवहार करता है। ज्ञानेन्द्रियों का नियंत्रण मन करता है मन का संचालन बुद्वि करती है। उपनिषद्

में कहा गया है विषय घास है इन्द्रियॉ घोड़े है मन इन घोड़ों की लगाम है एवं बुद्वि इस शरीर रूपी रथ का संचालक है।

बुद्धि के द्वारा हम जैसे कर्म करते है वैसी ही वासनायें हमारे अन्तःकरण में अंकित हो जाती हैं। वही वासनायें जीव के क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। यही अगले जन्म के लिये संचित कर्म बनते हैं जो शरीर की मृत्यु के उपरांत भी बीजावस्था में रहते हैं। अगले जन्म में बही प्रारब्ध बनकर आते रहते हैं इस प्रकार जीव वासना के अनुसार नाना योनियों में भटकता रहता है। केवल मनुष्य योनी ही ऐसी योनी है जिसमें मनुष्य योग के द्वारा परमात्मा से जुडकर इन जन्मान्तर की वासनाओं का अपने मन एवं इन्द्रियों पर बुद्धि के द्वारा नियंत्रण करके मनुष्य वासना से छुटकारा पा सकता है। वासना अथवा कमाना ही बन्धन है एवं निर्वासनिक जीवन मुक्ति है। जब अन्तःकरण निर्वासनिक होता है तभी त्तव जिज्ञासा उत्पन्न होती है। तत्त्व जिज्ञासु को जब गुरू तत्वमसि का उपदेश करते हैं तब शिष्य आत्मा को परमात्मा अथवा ब्रह्म चैतन्य के रूप में जान कर परमात्मा हो जाता है।

ऐसा जीवन युक्त महापुरूष ही ज्ञानी अथवा सिद्ध महापुरूष होता है। यह मनुष्य की नर से नारायण बनने की प्रक्रिया है। प्रकृति में केवल मनुष्य में नर से नारायण बनने की क्षमता विद्यमान है। इसलिये मनुष्य जीवन को दुर्लभ कहा गया है। गीता में भगवान ने कहा है–

योगाः कर्मशु कोशलं

हमारे जीवन की कुशलता यही है कि हम संसार के सभी व्यवहार करते हुये कहीं बंधे नही अपने सुख को बैंक में या सम्पत्ति में अथवा इन्द्रियों की तृप्ति में गिरवी न करें। कामना रहित होकर उस परमतत्त्व के जिज्ञासु बनकर उस परमतत्त्व से जुड़े।

कामहि नार प्यार जिम लोभह जिम प्रिय दाम।
तिम रघुनाथ निरंतर प्रिय लागो मोहे राम।।

पत्रिका से संकलित

:– मुमुक्षा :–

भगवान ने सृष्टि में चार प्रकार के प्राणी बनाये है। उद्विज्ज स्वेदज अण्डज और पिण्डज (जरायुज) उद्विज्ज प्राणी वे हैं जो घरती को फोड़कर निकलते हैं जैसे वृक्ष। इनमें चेतना की एक कला विकसित होती है। स्वेदज प्राणी वे होते हैं जो स्वेद (पसीने) से उत्पन्न होते हैं जैसे जूॅ., खटमल आदि। इनमें चेतना की दो कलायें विकसित होती हैं। अण्डज प्राणी वे होते हैं जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं जैसे पक्षी । इनमें चेतना की तीन कलायें विकसित होती हैं। जरायुज वे प्राणी होते हैं जो जेर में बॅधे उत्पन्न होते हैं जैसे चतुष्पाद पशु और द्विपाद मनुष्य। पशुओं में चेतना की चार और मनुष्यों में चेतना की पॉच कलायें विकसित होती हैं। प्रकृति स्वयं में मनुष्य को जितना उन्नत बना सकती थी उसने बना दिया। इसके आगे मनुष्य अपना विकास स्वयं करें।

शास्त्रों पुराणों में मनुष्य शरीर को बड़ा ही दुर्लभ माना गया है। मनुष्य शरीर ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के लिये बड़े–बड़े देवता भी ललचाते रहते हैं। क्योकि इससे बड़ी से बड़ी उन्नति हो सकती है।

श्रीमद्‌भागवत में बताया गया है कि–

दुर्लभों मानुषों देहिनां क्षणभङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुष्ठप्रियवर्शनम।।

मनुष्य शरीर और मानव जीवन का समय बहुत ही दुर्लभ हैं। मनुष्य शरीर और मनुष्यता की सबसे बड़ी दुर्लभता यही है कि इसके द्वारा परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। जीव का कल्याण हो सकता है और सदा के लिये उसे परम शान्ति की प्राप्ति हो सकती है। वह अपनी बुद्धि को इतना विकसित कर सकता है कि बह परमेश्वर से एक हो जाये । यह अवसर अन्य प्राणी शरीर में प्राप्त नही है। ज्ञान की पूर्णतः का अनुभव कर सकते है। और अविनाशी ईश्वर को प्राप्त कर सकते है।

हम अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर प्राप्त नही कर सकते। पूर्व जन्मों के पुण्यों के फल से और ईश्वर की इच्छा से मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है।

पुराणों में वर्णन है कि ईश्वर ने अपनी माया से तरह तरह के शरीर बनाये हैं वृक्ष, कीड़े, पशु, पक्षी, मच्छर आदि परन्तु उनको देखकर उनको कोई सन्तोष नही हुआ। ईश्वर को आनन्द तब हुआ जब उसने मनुष्य शरीर की रचना को देखा।

ईश्वर को लगा कि मैंने ऐसा शरीर बनाया है जिसमें ब्रह्मनुभूति की योग्यता है। अन्य प्राणियों में न तो साधन–चुतुष्टय का अभ्यास है और न ही उनके पास वेद शास्त्रादि का श्रवण है। अतः मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कोई प्राणी ब्रह्मनुभूति की योग्यता नहीं रखते। इसलिये केवल मनुष्य योनि में ही तत्त्वज्ञान हो सकता है। इसलिये यह ईश्वर का बडा अनुग्रह है कि उसने हमको यह मनुष्य का शरीर प्रदान किया हैं। विशेष ध्यान देने वाली बात यह है कि मानव शरीर केवल अपना कल्याण करने के लिये ही मिला है।

मनुष्य जन्म की सार्थकता तभी है जब मानव के मन में मुमुक्षा का उदय हो जाय। मुमुक्षा–मोक्ष की इच्छा, छूटने की कामना। सभी प्रकार के बन्धन से छूटने की इच्छा, अपूर्णता से छूटने की इच्छा, संसार से छूटने की इच्छा।

विवेक चूड़ामणि में मनुष्य हों कर मुमुक्ष होना यह दूसरी दुर्लभ वस्तु कही गयी है।

वि0चू0 – दुर्लभं त्रयमेवैतद देवानुग्रहहेतुकम।
मनुष्यत्वं मुमुक्षत्वं महापुरूषसंश्रयः।।

यह मुमुक्षा अद्वैत वासना का उदय मनुष्य के मन में ईश्वर के अनुग्रह से ही होता है। इसकी दुर्लभता बताने के लिये भगवान गीता में कहते हैं –

मनुष्याणां सत्सेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेति तत्वतः।।

हजारों मनुष्यों में कोई ही ईश्वर प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है। और उन हजार हजार सिद्धों में भी किसी किसी को तत्त्वज्ञान होता है।

मुमुक्षा अर्थात मोक्ष की इच्छा–माने छूटने की इच्छा। मोत्कुं इच्छा मुमुक्षा जिन बन्धनों में हम फसें हैं। उनसे छूटने की इच्छा। यह मोक्षेच्छा जिस मनुष्य में रहती है उसका नाम है मुमुक्ष।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम सब किस बन्धन में फॅसे हैं भौतिक रूप से हम किसी व्यक्ति वस्तु आदि के साथ बंधे हुये नहीं हैं। सारे बन्धन मानसिक हैं। मन की ऐसी आदत पड़ गयी है कि यह कहीं न कहीं अपने को बॉध लेता है।

विषय भी कल्पित है और उसका बन्धन भी कल्पित है। विषयों में सत्यत्व बुद्धि और सुख –बुद्धि उन विषयों में राग द्वेष और सम्बन्ध की कल्पना को जन्म देते हैं। उसी से बन्धन होता है तो विषय हमें दुखदायी लगने लगते हैं। उनको हम छोड़ना चाहते है और जो विषय हमें सुखरूप लगते हैं उन्हें हम पकड़ना चाहते हैं। संसार का सुख तो अनित्य है। आया है तो जायेगा भी हम सांसारिक सुख को चाहते तो हमेशा के लिये पकड़ के रखना लेकिन यह छूट ही जाता है और बन्धन होता है।

अतः दुख और अनित्यता से जब वैराग्य प्रारम्भ होता है तभी असली मुमुक्षा का प्रारम्भ होता है।

वास्तव में मुक्ति तो स्वतः सिद्ध है। अज्ञान के कारण हमने अपना सम्बन्ध जड़ प्रकृति से मान रखा है। यह माना हुआ बन्धन मानसिक है वास्तविक नहीं। छोड़ना भी इसे मन से ही है। जिस क्षण हमने चित्त का माने हुये का त्याग कर दिया उसी क्षण जीव मुक्त हो गया। अज्ञान ही बन्धन का मूल कारण है, इसकी निवृति ब्रह्म विचार के बिना नहीं हो सकती। उपनिषदों का भी सिद्धान्त हैं कि तत्त्वज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। ऋतेज्ञानन्त मुक्तिः।

मुमुक्षुत्व की सिद्धि किसी महापुरूष के संश्रय से होगी। यह महापुरूष की शरणागति और उसके आश्रय की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ वस्तु है। जो मुमुक्ष है वह महापुरूष की शरण में जाये।वह आपको मुक्ति का मार्ग दिखायेगें। वही आपके गुरू होगें। गुरू वही होता है जो परमात्मा को दिखा दे। गुरू मुख के तत्त्व का श्रवण करें और तात्पर्य का निश्चय करें। सच्चिदानन्द परमात्मा को अपनी आत्मा के रूप में अनुभूत करें।

बड़ी अद्‌भुत बात है अपना आपा नित्य शुद्ध–बुद्ध मुक्त ही है। जो अपना आपा होता है और नित्य परमानन्द स्वरूप होता है वह अज्ञान के कारण ही अन्य सा अनित्य सा भासता है। अतः उसकी निवृत्ति के लिये तत्त्वज्ञान आवश्यक है और वह केवल ब्रह्मविचार तत्त्व विचार से ही सिद्ध होगा। अतः गुरू शरणागति स्वीकार करके तत्त्व विचार में ही तत्पर रहना मुमुक्षु का मुख्य कर्तव्य है और मोक्ष प्राप्ति का यही एक मात्र उपाय है।

ब्रह्मचारिणी गार्गी चैतन्य
चिन्मय मिशन, सतना (म0 प्र0)

आत्मा का सत् स्वरूप

शास्त्रों में आत्मा के लक्षण सत् चित्त आनन्द बताये गये हैं। आज हमें मैं (अहं) के रूप में जो औपाधिक अनुभव हो रहा है कि मैं शरीर हूँ, मन हूँ, पिता हूँ, पुत्र हूँ इत्यादि जीव भाव के लक्षण हैं। जब इसी मैं (अहं) को उपधियों के बिना अनुभव करने लगते हैं, वही आत्मानुभव है। पूर्व अनुभव (जीव भाव) में हमें स्वंय में परिवर्तनशीलता, शोक, सीमितता आदि का जो आभास हो रहा था, वह अब बदल जाता है। वही मैं सत् चित् आनन्द लक्षणों वाला अनुभव में आता है। वर्तमान में हमारी अनुभूति औपाधिक होने के कारण शास्त्रों में वर्णित सत् चित् आनन्द लक्षण ग्रहण नहीं हो पाते। इसलिये हमारे कृपालु दयासागर संतों गुरूजनों ने शास्त्रों को सरल प्रक्रियाओं द्वारा प्रस्तुत कर हमारे लिये ग्रहणीय बनाया। गुरूजन सर्वप्रथम आत्मा के 'सत्' लक्षण की सिद्धि करते हैं। उस हेतु वे "ज्ञात से अज्ञात की ओर" विधि को अपनाते हैं।

हमारा शुद्ध स्वरूप 'सत्' है। सत् माने जिसकी सत्ता है, जो हमेशा रहता है, जिसका कभी बाध नहीं किया जा सकता। सत् की परिभाषा आचार्यगणों ने दी "सत्यम् अबाध्यम्" अर्थात् सत्य (सत्) वह है जिसका कभी बाध नहीं किया जा सकता। जिसे कभी हटाया नहीं जा सकता। गीता में भगवान ने बताया कि "नासतो विद्यते भावो, नाभावोविद्यते सतः (2:16)" अर्थात् असत् वस्तु का कभी अस्तित्व नहीं होता और सत् वस्तु का कभी अभाव नहीं है। गौड़पदाचार्य जी ने माण्डूक्य कारिका में (2:6, 4:1) यही परिभाषा दूसरे शब्दों में दी है। "आदावन्ते च यत् नास्ति वर्तमानेऽपितत् तथा" अर्थात् जो आदि (पहले) और अन्त में नहीं है, वह वर्तमान में भी वैसा ही है माने नहीं है। चाहें अभी अनुभव में कितना ही सत्य प्रतीत हो रहा हो। अनादि अनन्त नित्य विद्यमान वस्तु ही सत् है।

जीव की तीन अवस्थायें हैं– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। जब शरीर में स्थित होकर इन्द्रियों से बाहरी जगत का ज्ञान हो, वह जाग्रत अवस्था है। जब इन्द्रियां मन में लीन

हो जाती हैं और मन से विषयों का ज्ञान होता है तो उसे स्वप्न अवस्था कहते हैं। मन के भी लीन होने पर जब विषयों का ज्ञान नहीं होता, वह सुषुप्ति अवस्था है।

जाग्रत अवस्था में हमें पाँच इन्द्रियों से पाँच विषयों का ज्ञान होता है। श्रोत् (कान) से शब्द, त्वक् (त्वचा) से स्पर्श, नेत्र (आँख) से रूप, जिव्हा (जीभ) से रस तथा नासिका (नाक) से गन्ध विषय का ज्ञान होता है। विषयों के पाँच रूप होने के कारण प्राप्त ज्ञान पाँच प्रकार का होता है किन्तु शुद्ध ज्ञान तो एक ही है। विषय अनेक होने पर भी उनको ग्रहण अनुभव करने वाला एक ही तत्व है। विषय बदलने पर भी वह ज्ञान, तत्त्व नहीं बदलता। सारे विषय उस एक तत्त्व से ही जाने जाते हैं। वही 'सत्' है। जैसे एक किलो के बांट से एक किलो गेंहू तौलने के बाद चीनी, दाल आदि तौलते हैं तो तौली हुई वस्तु (विषय) बदलते हैं किन्तु बाँट (ज्ञान, तत्त्व, सत्) वही रहता है।

जिस प्रकार एक ही अविभक्त आकाश घट की उपाधि से घटाकाश और मठ की उपाधि से मठाकाश कहलाता है, उसी प्रकार एक ही अविभक्त ज्ञान शब्द की उपाधि से, शब्द ज्ञान रूप की उपाधि से रूप ज्ञान आदि कहलाता है।

हमें जाग्रत में विषयों का अनुभव करते समय विषयों की अनेकता, परिवर्तनशीलता और उनके गतागत (आने जाने वाले) स्वभाव की पहचान कर ज्ञान की एकता, अपरिवर्तनशीलता, नित्यता को समझने का प्रयास करना चाहिए। इसी ज्ञान की डोरी पकड़कर हम आगे आत्मज्ञान की ओर बढ़ेंगे।

जाग्रत अवस्था की भाँति स्वप्न अवस्था में भी विषयों की अनेकता और ज्ञान की एकता है। स्वप्न में भी अनेक विषय होने पर उनको ग्रहण करने वाला ज्ञान एक ही है। जाग्रत और स्वप्न अवस्था में विषय अनेक और ज्ञान एक होने पर भी दोंनो अवस्थाओं में अन्तर है। जाग्रत के विषय स्थिर होते हैं। सोकर उठने पर हमें अपना कमरा, मेज, कुर्सी आदि वहीं मिलते हैं जहां वो सोने से पहले थे। किन्तु ये स्थिरता स्वप्न के विषयों के साथ नहीं होती है। यदि स्वप्न में शेर मिल जाये तो जागने पर हम देखते हैं कि वास्तव में वो नहीं है। स्वप्न की वस्तुओं का अस्थिर स्वभाव देखकर ही स्वप्न को मिथ्या कहते हैं। जाग्रत की वस्तुऐं स्वप्न की अपेक्षा अधिक स्थिर लगती हैं, इसीलिए हम

जाग्रत को सत्य समझते हैं। स्वप्न मिथ्या है किन्तु वहां जो ज्ञान है, वह वहीं है जो जाग्रत में भी है। जो जाग्रत का दृष्टा है वही स्वप्न का भी दृष्टा है। वही सत् नित्य तत्त्व है।

जो ज्ञान (दृष्टा) जाग्रत स्वप्न में है वही सुषुप्ति अवस्था में भी रहता है। सोकर जागने पर हम कहते हैं कि आज इतनी गहरी नींद आई कुछ भी पता नहीं चला। ये गहरी नींद का आना और कुछ भी पता नहीं चलना, ये जानने वाला कौन है? मेरी शरीर इन्द्रियां तो उस समय सचेत नहीं थीं। गाढ़ सुषुप्ति में भी जिसका यह अनुभव है, जिसने ये जाना वही दृष्टा है, ज्ञान है, सत् है। जो जाग्रत–स्वप्न में विषयों की अनुभूति करता है। वही सुषुप्ति में निर्विषय (विषयों के अभाव) की अनुभूति करता है। सुषुप्ति में विषय का अभाव है, ज्ञान या सत् का अभाव नहीं है।

जैसे हम कहते हैं कि मैंने खाना खाया और कभी कहते हैं कि मैंने कुछ नहीं खाया। यहां एक स्थिति में भोजन रूपी विषय है और उसको खाने वाला (अनुभवकर्ता, ज्ञान) भी है। दूसरी स्थिति में भोजनरूपी विषय नहीं है, किन्तु उसके न होने का भी अनुभव करने वाला ज्ञान विद्यमान है। तभी तो कोई कह सकता है कि मैंने कुछ नहीं खाया या जाना।

इस प्रकार विषय भेद से हमारी तीन अवस्थायें हैं। जब हमें स्थिर विषयों का ज्ञान होता है, वह जाग्रत अवस्था है। जब अस्थिर विषयों का ज्ञान होता है, वह स्वप्नावस्था है। जब स्थिर–अस्थिर किसी विषय का बोध नहीं होता है तो वह सुषुप्ति अवस्था है। अवस्था तीन होने पर भी इन तीनों की जानकारी एक ही ज्ञान से होती है। इससे सिद्ध होता है कि एक ही ज्ञान तीनों अवस्थाओं में अविभक्त रूप से विद्यमान रहता है। वही सत् है, नित्य है, शाश्वत् है। यही आत्मा (हमारा) सत् लक्षण है। गुरूमुख से इस सत् स्वरूप का श्रवण बारम्बार कर इसमें स्थित होने का अभ्यास करना चाहिए।

गुरू चरणों मे समर्पित।

ब्र0 राघवेन्द्र चैतन्य
चिन्मय मिशन, झांसी।

"सुख–दुःख स्पृहः रहित"

दुःखेष्वनुद्विग्मनाः सुखेषु विगत स्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते।।

श्री मद् भगवद्गीता 2:56

दुःखेष्वनुद्विग्मनाः – तात्पर्य है कि कर्तव्य–कर्म करते समय कर्म करने में बाधा आ जाने पर, निन्दा–अपमान होने पर, कर्म का फल इच्छा अनुरूप प्राप्त न होने पर आदि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जिसके मन में तनिक भी उद्वेग उत्पन्न नहीं होता। दुःख को आने से कभी भी बलात् रोकने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, अपितु उस विषम परिस्थिति में मन से सुख की इच्छा का त्याग करना चाहिए। जिस तरह से वर्षा होना रूक जाये या सूर्य गर्मी न दे ऐसा सोचने से कुछ भी नहीं हो पाता, अपितु वर्षा और धूप में छाता लगाकर ही इससे बचाव कर लेना चाहिए।

दूसरों के हित में कार्य करने से एवं कर्म के फल में आसक्ति, ममता एवं कामना उत्पन्न न हो इसके प्रति सावधान रहने से मन प्रसन्न रहता है। तज्जनित प्रतिकूलता से उत्पन्न होने वाला दुःख अब मन में उद्वेग पैदा नहीं करता।

सुखेषु विगतस्पृहः – अनुकूल कर्मफल प्राप्त होने पर, आदर–सम्मान मिलने पर मन में स्पृहा होती है कि उत्पन्न अनुकूलताऐं बनी रहें। परन्तु उन्हें पकड़कर रखने की इच्छा मन में नहीं रखनी चाहिए।

वीतरागभयक्रोधः – सांसारिक पदार्थों का मन में जो आकर्षण होता है, वह राग है। उसमें विघ्न डालने वाले सबल व्यक्ति का भय होता है और अगर वह कमजोर होता है तो उस पर क्रोध आता है। जीवन में उद्वेग एवं स्पृहा नहीं रहे, इसके लिये भय एवं क्रोध को मिटाना होता है। जिसके मन में राग नहीं होगा उसमें सुख की स्पृहा नहीं होगी। अगर अपने अन्दर दूसरों को सुख पहुँचाने का भाव बना रहे तो राग, भय एवं क्रोध सर्वथा स्वतः नष्ट हो जायेंगे। ऐसा व्यक्ति ही अनुद्विग्नचित्त हो सकता है। जब तक उद्वेग एवं स्पृहा नहीं मिटती तब तक बुद्धि अस्थिर ही रहती है यानी मन स्थिर नहीं हो पाता।

स्थितधीर्मुनिरूच्यते – जिस मुनि की बुद्धि स्थिर हो जाती है और बुद्धि परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाती है। वह जानता है कि सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा अजर अमर हम सबका "मैं" है।

विगतस्पृहाः का सामान्य रूप में आशय है कि ऐसे रहना चाहिए कि सुख–दुःख नहीं भासे। प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वंय अन्तर्मुखी होकर आत्म चिंतन करें।

महापुरूषों के जीवन में भी दुःख आते हैं। मानव के व्यवहारिक जीवन में दुःख आये ही नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता। जीवित व्यक्ति संज्ञाशून्य हो ही नहीं सकता, शरीर के धर्म तो होंगे ही और सुख–दुःख की अनुभूति भी उसे होगी। शरीर को कांटा लगने पर दर्द की अनुभूति, भूख लगने पर भूख की अनुभूति होगी ही और खट्टा–मीठा खाने पर उसका स्वाद मन में आयेगा ही। व्यक्ति साधारण हो अथवा ब्रह्मज्ञानी अवस्था वाला हो, तत्सम अनुभूति तो दोंनों को ही होगी। अन्तर इतना अवश्य होगा कि ब्रह्मज्ञानी को शारीरिक वेदना तो होगी किन्तु आत्मनिष्ठ होने के कारण वह मानसिक वेदना की अनुभूति से परे रहेंगे जिससे मन विचलित नहीं हो पाएगा।

मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम के जीवन में अयोध्या से वनवास, स्वजनों से वियोग, वन में अर्धांगनी सीता जी का हरण और राज्य मिलने पर भी सीता जी का त्याग जैसे अनेक दुःख आये। लीला पुरूषोत्तम श्री कृष्ण जी के जीवन में भी कहाँ कम दुःख आये? ब्रज के परम प्रियजनों का सदा के लिये वियोग, मथुरा परित्याग एवं अपने सामने ही अपने सम्पूर्ण कुल का नाश देखना दुःख ही थे। आशय है कि दुःख के प्रसंग सभी के जीवन काल में किसी न किसी रूप में आते ही हैं। इसीलिए ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि मन में दुःख प्रवेश न कर सके। जैसे कमल के पत्ते पर वर्षा की बूंदें पड़ती तो हैं किन्तु वह पत्ते को गीला नहीं कर पाती इसी प्रकार महापुरूषों के जीवन में दुःख आते तो हैं किन्तु उनकी बुद्धि को वे तनिक भी विचलित, उद्विग्न नहीं कर पाते।

एक घटना का उल्लेख करना अति सुन्दर होगा। वशिष्ठ रामायण में उल्लेख आता है कि महर्षि वशिष्ठ जी के एक सौ पुत्रों को राजर्षि विश्वामित्र ने मार डाला था। जिससे महर्षि वशिष्ठ जी के मन में अत्याधिक मानसिक वेदना हुई और विपाशा (व्यास) नदी के पास देह त्यागने के विचार से गये। देह त्यागने को उद्यत हुए ही थे कि नदी स्त्री का रूप धारण

करके प्रकट हुई और वशिष्ठ जी से पूछा–"ऋषिवर क्या ज्ञानियों को भी दुःख होता है?" वशिष्ठ जी ने कुछ देर विचार किया और कहा – "नहीं", ज्ञानियों को दुःख नहीं होता। तत्पश्चात् उनके मन से देह त्यागने का विचार बिलुप्त हो गया, और वहां से वह अपने आश्रम के लिये चल दिये।

अन्तःकरणाविष्ट चेतन कर्मेन्द्रियों की उपाधि से कर्ता, ज्ञानेन्द्रियों की उपाधि से ज्ञाता और मन की उपाधि से भोक्ता मानने वाला जो तुम में आभास है। अज्ञानवश उन सबमें तुमने "मैं" को जोड़ लिया है, इसीलिये ही शरीर का जन्म–मरण, संयोग–वियोग अपने में आरोपित कर लिया है। ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू की कृपा से अज्ञान हटते ही अपने अजर–अमर सच्चिदानन्द स्वरूप "मैं" का बोध हो जाता है। वह ही हमारी आत्मा है, वही ब्रह्म है जिसे विशुद्ध प्रज्ञा से जान लेने पर, सुख–दुःख जीवन में उथल–पुथल पैदा नहीं कर पाते। सारा दृश्य प्रपंच प्रतीति मात्र है नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द परमात्मा में सुख–दुःख की कोई सत्ता नहीं है।

ब्रह्मज्ञानी को सुख–दुःख की अनुभूति क्षणिक, अल्पावधि के लिये ही होती है उनमें वह स्थायी विक्षेप नहीं लाती। जिस प्रकार हम पानी पर लकीर खींचे तो लकीर पीछे से मिटती जाती है उसी प्रकार ब्रह्मात्मैक्य बोध पा जाने वाले के पास सुख–दुःख आने पर भी मन में कोई हलचल पैदा किये बिना मन की सहज शान्त व्यवस्था बनी रहती है। विक्षेप की स्थिति पैदा किये बिना मन परमतत्त्व के ज्ञान के प्रकाश से सदैव आच्छादित बना रहता है।

शरीर को "मैं" मानकर अपने को परिछिन्न मानने के कारण ही भय, क्रोध, द्वेष एवं राग स्पृहा के रूप में व्यक्त होते हैं। वही जीवन में उथल–पुथल लाने के कारण होते हैं। जिस प्रकार गंगा जी में आप फूल प्रवाहित करते हैं या मुर्दा को प्रवाहित करते हैं उसे कोई फर्क नहीं पड़ता वह तो शान्त अविरल बहती रहती है उसी प्रकार आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी महापुरूष सुख–दुःख से स्पृहा रहित होकर परम शान्ति को पाकर, परमानन्द में स्थित बने रहते हैं।

प्रमोद कुमार गुप्ता
झांसी

मंगलमय गुरू के पद पंकज, मंगलमय गुरू की प्रिय वाणी।
मंगलमय गुरू की दिनचर्या, मंगलमय गुरू भक्ति बखानी।
मंगलमय गुरूदेव के दर्शन, मंगलमय गुरू कीर्ति मानी।
मंगलमय नख से सिखलौं, गुरू मूर्ति वेद पुराणन गानी।।

अर्चनीय वंदनीय प्रातः स्मरणीय ब्रह्मलीन श्री सद्गुरूदेव भगवान, सभी संत महापुरूष एवं सभी भक्तजन, हम सभी गुरू पूर्णिमा पर इस पवित्र दिवस की महत्ता को समझें। गुरू (गु+रू) "गु" शब्द अंधकार के लिये और "रू" प्रकाश के लिये है। भाव– अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाले को ही गुरू कहते हैं। पूर्णिमा भाव सारी रात चांदनी ही चांदनी रहे, तो यह एक ऐसा दिन है जो हमें संदेश देता है कि मनुष्य शरीर में आकर अंधकार में रहे तो आप का आना बेकार पशुवत है। महात्मा बुद्ध को ज्ञान पूर्णिमा को हुआ तो महावीर स्वामी को अमावस्या को। पर महावीर स्वामी के लिये अमावस भी पूर्णिमा हो गई जब उन्हें प्रकाश की झलक मिल गई, तो आओ हम भी गुरू द्वारा दिखाये गये रास्ते पर चल कर ज्ञान में अवस्थित होकर प्रकाशमय जीवन जीने का संकल्प लें तो ही हम ब्रह्माकार जीवन जीते हुए मुक्ति मार्ग पर चलने का प्रयत्न करें। शिवोहम्।

तिलक राज शर्मा
पंजाब

"सुख"

पाकर योनि लख चौरासी, जीव भटकता है अविनाशी।
तन मन धन के अभिमान में, करता है सब कर्म विनाशी।। 1।।
यहाँ मिलेगा वहाँ मिलेगा, सुख की चाह में बदहवासी।
देश कर्म सम्बन्ध बदलता, फिर भी न पाता सुख की राशी।। 2।।
राम कृपा से पुण्य उदय जब, उसके जीवन में हैं होते।
संत आगमन संत समागम, सत्संग के अवसर हैं आते।। 3।।
निश्छल सेवा प्रेम समर्पण, सतगुरू के मन को हरषाते।
काल बीतने पर वो साधक, निर्मल कोमल मन को पाते।। 4।।
फिर आती अनमोल घड़ी वो, सतगुरू मुक्ति का मार्ग बताते।
अपनी पावन करूणा से वो, "तत्त्वमसि" मन में धर जाते।। 5।।
अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि, जीवन को हर क्षण वो बनाते।
कर्म धर्म के जाल से बचकर, जीवन रहते सुख पा जाते।। 6।।

ब्र0 राघवेन्द्र चैतन्य, चिन्मय मिशन, झाँसी।

कैसे बनें आध्यात्मिक

जिस प्रकार शब्दकोष में असत्य शब्द है पर परिस्थितियॉ जन्य मौन सर्वोत्तम है, ठीक उसी प्रकार जगत में देखने की असंख्य वस्तुयें हैं पर बंद नेत्रों से स्वयं के अन्दर देखना सर्वोत्तम है।

संपत्ति के उत्तराधिकारी एक से ज्यादा हो सकते है लेकिन कर्म के उत्तराधिकारी हम स्वयं ही होते है। भगवान और इंसान में सिर्फ इतना फर्क है कि भगवान तन से पत्थर हैं और मानव मन से पत्थर है।

आध्यात्म कोई कर्मकाण्ड नहीं है। आध्यात्म पूजा पाठ नहीं है हॉ इन कियाकलापों से आध्यात्मिकता से विकास में सहायता मिल सकती है परन्तु केवल इनसे आध्यात्मिकता ही नहीं मिल सकती। वर्तमान समय में आध्यात्मिकता को अपने अपने ढंग से परिभाषित किया गया है पर यह परिभाषा अपनी मूल अवधारणा पर आधारित नहीं होने के कारण अनेक भ्रान्तियॉ एवं भ्रम पैदा करती हैं। आध्यात्मिकता है विचारों एवं भावनाओं में पवित्रता एवं दिव्यता। आध्यात्म पवित्र एवं परिशोधित चित्त में अवतरित होता है जब चित्त अपने कलुष संस्कारों से क्लिष्ट संस्कारों में घुल जाता है तो ऐसा हो जाता है जैसे स्वच्छ एवं साफ तारों भरे आसमान में पूर्णिमा का चॉद अपनी शुभ रोशनी बिखेरता हैं। चित्त के परिशोधन के बाद अन्तर्मन में परमात्मा का प्रकाश स्वतः ही बिखर जाता है यही आध्यात्म हैं। आध्यात्म जीवन की सर्वांगीण दृष्टि है एवं समग्र विज्ञान हैं। इसमें अधूरापन नहीं है और न यह एकांकी है। यह समग्रता का पर्याय है जिसमें विचारों और भावनाओं में टकराहट नहीं होती हैं बल्कि एक सामंजस्य होता है। इस सामंजस्य में जिस सौन्दर्य की अनुभूति होती है उसे ही आध्यात्म कहते है। इस सौन्दर्य में पवित्रता घुली होती है इस सौन्दर्य में उत्कृष्टता मिली होती है यह सौन्दर्य दैहिक नहीं बल्कि आत्मिक होता है इसी कारण आंतरिक पवित्रता को सर्वोच्च सौन्दर्य की संज्ञा दी जाती है। जिसमें यह सौन्दर्य होता है देह से बेडौल कुरूप हाने के बावजूद उसे आध्यात्मिक माना जाता है। सुकरात आध्यात्मिक थे उनकी देह सुन्दर न होने के बावजूद उनके विचार एवं भाव उत्कृष्ट पवित्र एवं दिव्य थे।

आतंरिक सौन्दर्य एवं पवित्रता ही आध्यात्मिकता की कसौटी है परन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि जिसकी देह आर्कषक न हो वह आध्यात्मिक नहीं हो सकता। महाबीर भगवान बुद्ध शंकराचार्य स्वामी विवेकानन्द आदि की देह भी अति आर्कषक थी मन और भाव भी अति पवित्र थे उनके आन्तरिक एवं बाह्य दोंनो ही प़क्ष पवित्र एवं आर्कषक थे। आध्यात्म जगत में यह विरल घटना है परन्तु केवल दैहिक सुन्दरता आध्यात्मिकता के किसी मापदंड में नहीं आती। यदि देह के सौन्दर्य को ही आध्यात्म का अंग मान लिया जाय तो संसार में जितने सुन्दर युवक युवतियॉ एवं अन्य लोग है वे सारे आध्यात्मिक नहीं मान लिये जाते आध्यात्म का अंग मान लिये जाते हैं। आध्यात्म का सम्बन्ध देह की पवित्रता से अधिक मन एवं भावनाओं से है।

यह पवित्रता आये कैसे, व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की शुरूवात करे कैसे, यह प्रश्न अपने साथ ही उत्तर को समेटे हुये है इसी कारण इसे पहेली कहा जाता है।

पहेली अर्थात प्रश्न में जबाब का छुपा होना। पवित्रता पूजा पाठ के माध्यम से आये चाहें ध्यान भजन कीर्तन से निष्काम कर्म से आये चाहे तपस्या से परन्तु आए बस। जिस भी विधि से हो आतंरिक पवित्रता में अभिवृद्धि होनी चाहिये विषयों का अन्त होना चाहिये विचार उत्कृष्ट होना चाहिये भावना सफल होनी चाहिये यह सब तभी सम्भव होता है जब चित्त के किलिष्ट संस्कार करते है। जैसे जैसे किलष्ट कलुषित संस्कारों का दहन होता है वैसे वैसे चित्त परिशोधित एवं परिमार्जित होता है और पवित्रता बढ़ती है।

संस्कारों का दहन सामान्य प्रकिया नहीं है और न ही इसे कोई सामान्य यति योगी कर सकता है। इस कार्य को विशिष्ट दक्ष योगी भोगी जैसे महावीर, रमण, महर्षि श्री अरविन्द या स्वामी विवेकानन्द, शंकराचार्य आदि ही सम्पन्न कर सकते हैं। ये जिसके संस्कारों का दहन करते हैं उसको भी देह और मन से सुदृढ़ होना चाहिये अन्यथा इस दहन प्रकिया में देह के चिथड़े–चिथड़े होकर उड़ जायेंगे। संस्कारों का दहन पोखरन में किये गये परमाणु विस्फोट जैसा होता है। इसके अन्दर की जमीन दहल जाती है और बाहर एक भयानक गुबार जैसा निकलता है। संस्कारों के दहन में देह मन और हृदय पर असंख्य आघात प्रतिघात चलते है। जो इसे झेल जाता है उसका चित्त निर्मल और पावन हो जाता है। परन्तु इसे झेलना आसान नहीं है। श्री अरविन्द आश्रम में रहने वाले पवित्रा ने श्री मॉ से पवित्रता का

वरदान मॉगा श्री मॉ ने कहा कुछ और मांग लो यह अत्यंत दुष्कर और कठिन है परन्तु धुन के पक्के पवित्रता ने कहा हमें वस यही चाहिए हमारे विचारों में पवित्रता आ जाये भावनाओं में उत्कृष्टता आ जाये हमारे बुरे संस्कार कट जाये और चित्त परिमार्जित हो जाये श्री मॉ ने कहा जाओ हो जायेगा और फिर क्या था पवित्राकरण और बीमार हो गये सालों साल वर्ष प्रतिवर्ष भीषण बीमारी के आघात से आक्रांत हो गये पर वे विचलित नहीं हुये क्योंकि वह जानते थे कि यह संस्कार दहन की प्रक्रिया है जोकि आध्यात्मिकता की अनिवार्य एवं प्रारंभिक कसौटी है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि आध्यात्म वह कुंजी है जिसके माध्यम से हम अपना आत्मनिरीक्षण एवं आत्मनिर्माण कर सकते हैं। और यही सबसे बडा पुरूषार्थ है। यह आत्म साक्षात्कार का सुनियोजित आधार है। आध्यात्मिक शिक्षण प्रशिक्षण के माध्यम से हमें शक्ति और शान्ति प्राप्त करने का मौका मिलता है जो हमारे अंतरंग में छिपी हुई है और जिनको हम भावनाओं के द्वारा परिष्कृत कर सकते हैं भावनाओं द्वारा हम अपने अंतरंग को परिष्कृत कर सकते हैं। तब हमको आध्यात्मिकता के पूरे लाभ मिल सकते हैं। यही जीवन को परम लक्ष्य की ओर ले जाने वाले चित्त के परिष्कार की कुंजी बनता है।

डॉ0 रंजना शर्मा
नोएडा

संकल्प

मनुष्य के दुःखों का वास्तविक कारण उसका अपने मन पर नियंत्रण का अभाव है। अनियन्त्रित मन के कारण हम अपना ध्यान लक्ष्य की ओर केन्द्रित नहीं कर सकते। अनुशासनहीनता एवं दुराचरण के कारण बिगड़ैल मन हमें अपने इशारों पर नचाता रहता है। जैसे कि किसी भी नशे का आदि व्यक्ति ये जानता है कि ये नशा उसे गर्त में ले जा रहा है एवं गम्भीर रोग और मृत्यु की ओर खींच रहा है परन्तु फिर भी वह उसे छोड़ नहीं पाता एवं उसे पाने के लिये हर सम्भव प्रयास करता है। नशे के लिये कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। उसकी यह तड़प यदि अच्छी आदतों के लिये हो जाये और वह कल्याणकारी शुभकर्मों का संकल्प उठा ले तो उसकी शान्ति एवं प्रसन्नता के रास्ते में कोई अवरोध न होगा। उसे चाहिए तो वस "संकल्प" अच्छे कार्यों के लिए।

भगवत्कृपा प्राप्ति का प्रथम सोपान
प्रार्थना

मनुष्य की मनश्चेतना जब आध्यात्मिक जगत के सम्पर्क में आती है तो परमानन्द की अनुभूति मात्र से ही उसका अन्तःस्थल आहलादित हो उठता है और वह इस परमानन्द की प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयत्न करने लगता है। इन प्रयत्नों में सब से पहला सोपान आता है प्रार्थना।

वेदों में भी कहा गया है कि प्रार्थना में जो शक्ति है वह वेदों के ज्ञान में भी नहीं। सरल हृदय से की गयी प्रार्थना के द्धारा एक अज्ञानी और मूर्ख व्यक्ति भी ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है।

मृत्युलोक में दुखों का निराकरण करने के लिये प्रार्थना तो सभी करते हैं। परन्तु क्या हम वास्तव में प्रार्थना करते हैं कहीं हम प्रार्थना शब्द का उपहास तो नहीं कर रहे । महान संत कबीर ने कहा है –

माला तो कर में फिरें जीभ फिरै मुख नाहि।
मनवा तो चहु दिस फिरै यह तो सुमिरन नाहि।।

सत्य ही कहा है कि उन्होने केबल माला फेरने से या ॐ का उच्चारण करने मात्र से हम प्रार्थना नहीं कर सकते। प्रार्थना के लिये चाहिये मन की एकाग्रता हृदय की सरलता और ईश्वर प्राप्ति की उत्कण्ठा संसार का हर प्राणी मन के अधीन है। मन दुखी तो हम दुखी मन पापी तो हम पापी अब मन जो भी संकल्प विकल्प करता है हम उसी में साकार हो जाते हैं। इसी कारण मन नहीं हमारे बचन और मोक्ष का कारण बन बैठा है। मन को बश में करने के लिये ही सारे साधन और जप तप बनाए गये है।

हृदय की शुद्ध भावना ईश्वर के चरणों में निवेदन करना ही सच्ची प्रार्थना है। इसके लिये मन्त्रों की जरूरत नहीं होती जरूरत होती है हृदय की शुद्ध भावना, प्रार्थना में यह नहीं देखा जाता है कि वह किस भाव में की गयी है उसमें केवल हृदय की निर्मल भावना देखी जाती है। ऐसी प्रार्थना जब कोई साधक करने लगता है तो उसके सारे संताप और दुःख दूर हो जाते हैं। ऐसी ही प्रार्थना में जीवन की सार्थकता होती है।

श्रीमती कुमकुम बिसारिया
आर्दश नगर झॉसी

:– दोष कैसे दूर हों :–

प्राणी के अन्तःकरण में जिन दोषों के कारण अशुद्धि या मलिनता है वे दोष कहीं बाहर से आये हुए नहीं है स्वयं उसी के बनाये हुये हैं। अतः उनको निकालकर अन्तःकरण को शुद्ध बनाने में वह सर्वथा स्वतंत्र हैं।

मनुष्य सोचता है और कहता है कि मेरे प्रारब्ध ही कुछ ऐसे हैं जो मुझे भगवान की ओर नहीं लगने देते मुझ पर भगवान की कृपा नहीं है। आजकल समय बहुत खराब है सत्संग नहीं है। आसपास का वातावरण अच्छा नहीं हैं। शरीर ठीक नहीं रहता परिवार का सहयोग नहीं है। अच्छा गुरू नहीं मिला। परिस्थिति अनुकूल नहीं है। एकान्त नहीं मिलता। समय नहीं मिलता आदि इसी प्रकार के अनेक कारणों को वह खोज लेता है जो उसे अपने आध्यात्मिक विकास में रूकावट डालने वाले प्रतीत होते हैं। और इस मिथ्या धारणा से या तो वह अपनी उन्नति से निराश हो जाता है या इस प्रकार का सन्तोष कर लेता है कि भगवान की जैसी इच्छा वे जब कृपा करेंगें तभी उन्नति होगी परन्तु वह अपनी असावधानी व भूल को नहीं देखता।

साधक को सोचना चाहिये कि जिन महापुरूषों ने भगवान की इच्छा पर अपने को छोड़ दिया है उनके जीवन में क्या कभी निराशा आती है। क्या वे किसी भी परिस्थिति में भगवान के सिवा किसी व्यक्ति या पदार्थ को अपना मानते हैं। उनके मन में क्या किसी प्रकार की भोग वासना शेष रहती है। यदि नहीं तो अपने बनाये हुये दोषों के रहते हुये भगवान की इच्छा का बहाना बनाते हुये अपने मन को झूठा संतोष मानना या आध्यात्मिक उन्नति में दूसरे व्यक्ति परिस्थिति आदि को बाधक समझना अपने आपको और दूसरों को धोखा देने के सिवा और क्या है?

साधक को चाहिए कि उसका अपना बनाया हुआ जो यह महान दोष है कि जिनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं है जो किसी प्रकार भी अपने नहीं हो सकते उन मन–बुद्धि और इन्द्रियों के शरीर को और उससे सम्बन्धित पदार्थों को अपना मान लिया है। तथा जिन परमपिता परमेश्वर पर विश्वास करना चाहिये जो सब प्रकार के योग्य हैं और

सचमुच सब प्रकार से अपने हैं उन पर न तो विश्वास करता है और न उन्हें अपना मानता है ओर न वर्तमान में उसकी आवश्यकता अनुभव करता है यही एक ऐसा महान दोष है जिससे सब प्रकार के बड़े–बड़े दोष उत्पन्न हुये हैं और होते रहते हैं। अतः इस दोष का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

यह दोष मनुष्य का अपना बनाया हुआ है। इसलिये स्वयं ही इसे दूर करना पड़ेगा। अपने बनाये हुये दोष को दूर करने में कोई भी साधक असमर्थ नहीं हो सकता। इस पर भी यदि उसे अपनी कमजोरी का भान हो यदि वह अपने को सचमुच असमर्थ समझता हो तो एसे निर्बलता के दु:ख से दुखी होकर ऐसे सर्वसमर्थ प्रभु की शरण में जाना चाहिये जो निर्बलों के बल हैं। पतितों को पवित्र बनाने वाले हैं और दीबन्धु हैं। निर्बलता का नाश होने से पहले चैन कैसे पड़ सकता है।

लोग कहते हैं कि भगवान न्यायकारी हैं। परन्तु साधक को तो यही समझना चाहिये कि वे तो सदैव दया करने वाले हैं। यही कारण है कि वे अपनी दी हुई शक्तियों का दुरूपयोग करने वालों को दण्ड नहीं देते। यदि न्याय करते तो झूठ बोलने वालों की जीभ उसी समय काट डालते। चोरी करने वालों के हाथ काट डालते परंतु ऐसा नहीं करते। वे तो सदा प्राणी पर कृपा करते हैं और ऐसी बात के लिये उत्सुक रहते हैं कि यह किसी प्रकार मुझ पर विश्वास करके एक बार ऐसा मान ले कि मैं तेरा हूॅ।

यदि साधक के मन में यह भाव आये कि भगवान को मैं जानता नहीं मैने उनको कभी देखा नहीं तो बिना देखे और बिना जानकारी के उन पर विश्वास कैसे किया जाये तो अपने मन को समझना चाहिये कि तू जिन–जिन पर विश्वास करता है और जिन को अपना मानता है क्या उन सब को जानता है विचार करने पर मालूम होगा कि नहीं जानता तो भी विश्वास करता है।

साधक को चाहिये कि प्रतिदिन शयन से पूर्व भली भॉति अपने बीते हुये दिन भर के जीवन का अपनी विवेक बुद्धि के द्वारा निरीक्षण करे अर्थात किन किन कारणों से कितनी बार मुझ पर आक्रमण हुआ इस निरीक्षण से जो असावधानी समझ में आये उसको त्यागने का दृढ संकल्प करे और उस दोष के विपरीत भाव की अपने में स्थापना करे।

यदि मिथ्या बोल दिया हो तो जिस प्रलोभन से यह दोष उत्पन्न हुआ है उसकी तुलना सत्य भाषण की महिमा को आत्मसात करके अपने मन को समझाये ताकि पुनः वह किसी प्रकार के प्रलोभन से आकर्षित न हो तथा यह संकल्प करें कि मैं मिथ्यावादी नहीं रहूंगा। अब कभी झूठ नही बोलूंगा। इसी प्रकार काम क्रोध आदि हर एक दोष के विषय में समझना चाहिये।

प्रातः उठने के बाद जिस–जिस काम में प्रवृत्त हो उससे पूर्व विवेकपूर्वक भलि–भॉति निर्णय कर ले कि मेरे द्वारा जो कार्य होने जा रहा है उससे किसी का अहित या किसी के अधिकार का अपहरण तो नहीं हो रहा है। जिन कार्यों में दूसरों का हित उनके अधिकार की रक्षा निहित हो उस कर्ता कर्म में शुद्धि आती है और परस्पर में स्नेह की एकता सुदृढ़ हो जाती हैं। हृदय प्रीति से भर जाता है साधक किसी का ऋणी नहीं रहता। ऐसा होने पर जीवन में स्वाधीनता आ जाती है।

यदि सम्भव हो तो सात दिन में एक बार जिनसे स्वभाव मिलता हो ऐसे सत्संगी भाइयों के साथ बैठकर आपस में विचार करें और उनके सामने अपने दोषों को बिना किसी संकोच तथा छिपाव के स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दें तथा उनको हटाने के लिये उनसे परामर्श लें। ऐसा करने से साधक के दोष शीघ्र ही मिट सकते हैं।

अरविन्द कुमार देवलिया
झॉसी

अरक्षितं निष्ठनि दैवरक्षितं,
सुरक्षितं दैवहनं विनर्श्यान।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः,
कृतप्रयत्नोऽपि ग्रहे विनश्यति।।

भगवान जिसकी रक्षा करते हैं, वह व्यक्ति बिना किसी रक्षा के साधनों के भी जीवित रहता है। और उनके द्वारा आरक्षित व्यक्ति सारी सुरक्षा के बाद भी जीवित नहीं रहता। तभी तो वन में छोड़ा हुआ अनाथ भी जीवित रहता है, जबकि घर पर हर प्रकार की देख–रेख एवं बचाव के प्रयत्नों के उपरान्त भी व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है।

सुमिरन बिन मुक्ति नाहिं

मनुष्य के मन का मिलन जब बाहर के विषयों से हो जाता है, तब उसे दो तरह की स्थितियों की अनुभूति होती है एक सुख और दूसरा दुःख। मनुष्य को जिसके मिलने से प्रसन्नता पैदा हो उसका नाम है सुख, जिसे हम हर्ष भी कहते हैं और जिसके मिलने पर नुकसान/हानि हो जाये उसका नाम दुःख होता है, जिसे हम विषाद भी कहते हैं। जीवन में सुख की प्राप्ति सभी चाहते हैं। मनुष्य जन्म से ही सुख चाहता है और दुःख से दूर रहना चाहता है। वह यह सोचता है कि सभी सुख अच्छे हैं व सभी दुःख बुरे हैं, किन्तु मनुष्य न तो हर समय सुखों का उपभोग कर सकता है और न ही हर समय दुःखों से दूर रह सकता है। कभी सुख के बाद दुःख मिलता है और कभी दुःख के बाद सुख। यदि हम विचार करके देखें तो वह सुख हमें ज्यादा अच्छा लगता है, जो दुःख के बाद मिलता है क्योंकि उसकी अनुभूति अधिक सुखदायी रहती है। जबकि दुःख के पहले मिले सुख की अनुभूति आये दुःख के कारण समाप्त हो जाती है।

अतः सुख का चुनाव करने के लिये मनुष्य को सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है कि वह ऐसे सुख की ओर जाता है, जो क्षणिक है अथवा ऐसे आनन्द का चुनाव करता है जो उसे सांसारिक सुख–दुःख से परे ले जाता है।

यदि मनुष्य का मन हर्ष और विषाद से ऊपर हो जाये अर्थात् उसकी प्रसन्नता का सम्बन्ध किसी विषय से न रहे, जैसे कोई दिया जल रहा है परन्तु इसीलिये नहीं कि कोई उसके पास बैठा है और दिया बुझ जाये कि कोई चला गया बल्कि अपने आप में वह जलकर प्रकाश करता है, उस दिये को किसी के होने न होने से कोई मतलब नहीं कि कोई आया और गया। अब इस दिये को हम अपने से जोड़ें और समझें कि चेतन दिया है एवं कोई भी कुछ भी करता रहे परन्तु उसका अपना प्रकाश कम नहीं होता अर्थात् मनुष्य यह जाने कि मैं एक ज्ञानादि/चैतन्यादि दीप हूँ जब मैं चेतन की अनुभूति प्राप्त कर जगा हुआ हूँ मुझे पता तो सब है पर मुझे किसी से अब कोई परेशानी नहीं है। मनुष्य द्वारा ऐसी चित्तवृत्ति तैयार करना ही देव ध्यान कहलाता है। साथ ही मनुष्य को स्वंय भी दुःखी नहीं रहना चाहिए कि मुझे किसी से कोई मतलब नहीं है तो इसका मतलब मैं अकेला हूँ संसार के सारे सम्बन्ध

इस शरीर के द्वारा बनाये हुए हूँ अपितु खुश रहना चाहिए कि मुझे किसी के रहने अथवा न रहने से कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं अपने आप में ही प्रसन्न हूँ। मनुष्य की इंद्रियों को प्रिय लगने वाला सुख अन्त में दुःख देता है। इसलिए हमें उस आनंद की खोज करनी चाहिए जिसका परिणाम कल्याणकारी हो। आनंद का मूल आत्मा मानी गई है और आत्मा को आनंदस्वरूप कहा गया है। विद्वान लोग संसार में भटकने की अपेक्षा अपने आप में स्थित उस आनंद को ढूँढ़ते हैं। अपनी शुद्ध आत्मा की अनुभूति करने के बाद आनंद अपने आप प्राप्त हो जाता है। उपनिषदों के दर्शन को आधार मानकर चलने वाले सभी धार्मिक और दार्शनिक संप्रदायों में आनंद को ही आत्मा की चरम अभिव्यक्ति माना गया है।

इसीलिए मनुष्य को पदार्थों की प्राप्ति के पीछे नहीं अपितु ज्ञान की प्राप्ति के उपाय करने चाहिए। सन्तजन सदैव अपना ज्ञान बढ़ाते रहते हैं जिससे उनका आनन्द भी बढ़ता जाता है एवं उनका आनन्द किसी के अधीन नहीं होता। सन्त जनों को कभी राग और द्वेष परेशान नहीं करते और मनुष्य के लिये यही राग और द्वेष सबसे खतरनाक हैं। जगत से राग करोगे तों बंध जाओगे और द्वेष करोगे तो भी शान्ति नहीं मिलेगी। किसी अन्य के कारण अपने आपको विचलित करना ही मनुष्य की नसमझी है। इसीलिये कहा गया है कि स्वंय में आनन्दमय रहो, जिसका सबसे अच्छा उपाय सुमिरन है। सुमिरन भी इस प्रकार का होना चाहिए कि हम बस सुमिरन में डूब जायें उसमें खो जायें, किसी के होने न होने से हमें कोई फर्क न पड़े और किसी के भटकाने पर हम भटकें भी नहीं। चाहे हम एक पत्थर को ही, उसमें भगवान मानकर सुमिरन करें परन्तु हमारा विश्वास अटल होना चाहिए। ऐसे सुमिरन से हम सारे दुःख भूल जाते हैं और हमें आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है, और जब हमें आनन्द की प्राप्ति होगी तो हमारा मन प्रसन्न रहेगा। बस यही प्रसन्नता यदि हम अपने व्यवहार में लाते हैं तो हमारी सारी इच्छायें समाप्त हो जाती हैं। फिर हमें किसी के होने न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता और हम सारे विषयों/बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।

वैभव वर्मा
न्यू रायगंज, झाँसी।

।। मानव जीवन में गुरू का महत्व ।।

जीव के ऊपर जब प्रभु की असीम कृपा होती है। तभी जीव को मानव शरीर की प्राप्ति होती है, क्योंकि रामचरितमानस में कहा है कि

बड़ेभाग मानस तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।

यहाँ तक की यह मानव शरीर भगवान की करूणामयी कृपा का ही परिणाम है।

कबहुँक कर करूणा नर देहि। देत ईश बिनु हेतु सनेही।।

इस प्राप्त हुए मनुष्य शरीर में यदि सद्गुरू की कृपा मिल जाये या सत्संग अथवा किसी सिद्ध संत का संग मिल जाये तो फिर जीव का कल्याण होकर मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

जीव का जन्म ही मोह, माया, ममता, आसक्ति, ऋण इन सबके वशीभूत होने से ही होता है। यह जीव को माया अपने वशीभूत कर लेती है।

सोमाया बस भयऊ गोसाई। बध्योकरि मरकट की नाई।।

यहाँ तक कि जन्म लेते ही इस जीव को माया उसी प्रकार से घेर लेती है।

भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लिपटानी।।

इस माया मोह से ग्रसित जीव को सद्गुरू ही अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से छुड़ा सकते हैं। गुरू शब्द का अर्थ बताते हुए गुरू गीता में कहा है कि

गुकारस्त्वन्धकारस्तु रूकार स्तेज उच्यते
अज्ञान–ग्रसकं ब्रह्मगुरूदेव न संशय

गुकार अन्धकार है, रूकार तेज कहलाता है।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्ज शलाकाया। चक्षुरन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

जिसने ज्ञानरूपी अन्जन की सलाई से, अज्ञानरूपी अन्धेरे से, अन्धी आंखों को खोल दिया है। उन श्री गुरूदेव को नमस्कार है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में भी कहा है कि

गुरूविनुभवनिधि तरई न कोई। जो विरंचि शंकर सम होई।।

कहने का भाव यह है कि भगवान की कृपा से सद्गुरू या सन्त के मिल जाने पर उनके चरणों में श्रद्धा और भक्ति को रखते हुए उनके द्वारा दिये गये ज्ञानोपदेशों को धारण करते हुए अपनी दिनचर्या को चलाने से न केवल दु:खों की निवृत्ति होती है, बल्कि सुख शान्ति का अनुभव करते हुए भगवत कृपा से जन्म–मृत्यु के बन्धन से भी मुक्ति मिल जाती है।

इसीलिए हर मनुष्य को चाहिए कि वह नर शरीर पाकर विषय वासनाओं की आसक्ति से अपने को मुक्त रखकर भगवान की भक्ति करते हुए सदाचार, सत्कर्म और परोपकार की भावना से मानव समाज की सेवा करे, तन–मन–धन से परमार्थ के मार्ग पर चल सके। जो ऐसा नहीं करते हैं, उनके विषय में तो भगवान ने स्वंय कहा है कि

जो न तरै भवसागर नर–समाज उस पाइ।

सो कृत निंदक मंदमति आत्माहान गति जाई।।

भाव यह है कि मानव जीवन का कल्याण कर लेना चाहिए इसी में मानव जीवन की सफलता है।

पं0 वेद प्रकाश त्रिवेदी
हिन्दी प्रवक्ता

पाठकों से अनुरोध

वेदनान्त आश्रम के समस्त भक्तों से अनुरोध है कि धार्मिक विषयों पर लेख या कविता, लिखने वाले नव–रचनाकार अपनी रचनाओं को विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका में छपने हेतु भेज सकते हैं। उचित रचनाओं को पत्रिका में स्थान अवश्य दिया जायेगा।

रचनाएं सुलेख में लिखी हों या फिर टाइप कराकर 10 जनवरी 2022 तक अवश्य भेज देवें।

सधन्यवाद — **सम्पादक**

ज्ञान का मार्ग

ब्रह्म अनंत है, और माया भी, क्योंकि माया ब्रह्म पर ही अध्यारोपित है। एक तो ये सत्य पर आवरण डाल देती है, दूसरा विक्षेप करती है। वेदान्त में संसार को रस्सी में सर्प की भ्रांति के रूप में समझाया जाता है। एक तो रस्सी सर्प दिखती है, दूसरा ऐसा प्रतीत होता है कि वो काटेगा भी, जिससे हमें भय रहता है। ये दोंनों ही अज्ञान जनित हैं। अब तामसिक प्रवृत्ति का व्यक्ति सोचता है कुछ करने की आवश्यकता नहीं, ये तो काटेगा ही। राजसिक को लगता है कि मैं इस सर्प को मार गिराऊंगा। सात्विक जानने का प्रयास करता है कि ये वास्तव में सर्प है या नहीं।

अब जो है ही नहीं वो मरेगा कैसे? आप कितना सिर पीटते रहो, रस्सी तो रस्सी ही रहेगी। इसलिए तत्त्वदर्शियों ने ज्ञान या योग का मार्ग बताया है। इस अनित्य संसार को जीतने का एक ही मार्ग ज्ञान है और मनुष्य योनि में ही उसकी एकमात्र संभावना।

ये कोई तथ्यात्मिक जानकारी मात्र नहीं है। बौद्धिक स्तर पर सभी जानते हैं कि मैं आत्मा हूँ और आत्मा अजर अमर है। ये अनुभव की स्थिति है जहाँ चित्त के सभी प्रकार मिट जाते हैं और जीव एवं ब्रह्म का एकत्व हो जाता है। यही वास्तविक ज्ञान है। संसार की किसी भी विषय वस्तु का ज्ञान, वस्तुतः अज्ञान ही है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

इन्द्रियों के विषयों पर और जहाँ तक मन जाता है, वो सब माया ही है। ब्रह्म इन्द्रियों और मन का विषय नहीं है, वह देखने सुनने में नहीं आता। आत्मज्ञान तो मायिक विषयों से अनासक्त होकर, किसी सद्गुरू की शरण में जाकर प्राप्त होता है।

यत्र योगेश्वरः कृषणो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

श्री मद् भगवद्गीता 18::78

गौरव वर्मा
नोएडा

।। सन्त कृपा।।

मनुष्य जीवन में भगवान की असीम कृपा से यदि कोई सन्त मिल जाते हैं और उनके सत्संग के प्रभाव से हमारे मन–बुद्धि, विचारों में अच्छे भाव आ जाते हैं तो हमारे जीवन में आचरण और व्यवहार तथा दिनचर्या में विशेष सुधार हो जाता है तो यह भगवान की बहुत बड़ी कृपा है।

जिस प्रकार से सुग्रीव ने संकटमोचन हनुमान जी को अपने जीवन में जोड़ लिया और हमेशा उन्हीं का सहारा लेते रहे, उन्हीं का कहना माना, उन्हीं पर पूर्ण विश्वास किया। यहां तक कि प्रथम बार भगवान का दर्शन करते ही सुग्रीव ने हनुमान जी का सहारा लेते हुए कहा है कि

अति सभीत कह सुनु हनुमान। पुरूष जुगल बल रूप निधाना।।
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई।।

परिणाम यह हुआ कि हनुमान जी ने सुग्रीव की राम से मित्रता करवा दी और कहा कि दीनबन्धु दीनानाथ दुःखहारी भक्त वत्सल भगवान श्री राम से अपने जीवन की सारी व्यथा कह लो। तब सुग्रीब ने भगवान राम से अपने जीवन की सारी व्यथा और बाली द्वारा किये गये अत्याचारों को विस्तार से वर्णन करके कह सुनाया। परिणाम यह हुआ कि भगवान श्री राम ने सुग्रीब से कहा कि

सखा सोच त्यागहूँ बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरें।।

सुग्रीब ने राम से भी कहा था कि

कह सुग्रीब सुनहु रघुवीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा।।
सब प्रकार करहुं सेवकाई। जाहिं विधि मिलिहि जानकी आईं।।

जब सुग्रीब राज–भवन–भोग–पत्नी परिवार इन सबको पाकर, भोग–विलास में फंसकर भगवान राम के काज को भूल गया कि मैंने भगवान राम से क्या वादा किया था। इस बात की तो श्री हनुमान जी को ही याद आई क्योंकि उनका सन्त ह्रदय था। अन्त में वह सोचने लगे कि – **यहां पवनसुत ह्रदय विचारा। रामकाज सुग्रीब विसारा।।**

उन्होंने भटकते हुए सुग्रीब को फिर से रामसेवक और भक्ति में लगा दिया तथा युद्ध में भगवान राम का साथ देकर, रावण वध के बाद सीता माता की प्राप्ति के उपरान्त अयोध्या आकर राम के राज्याभिषेक से जुड़कर अपने सच्चे सेवक धर्म और वचनों का पूर्ण समर्पण होकर पालन किया।

इसी प्रकार से हनुमान जी को देखकर विभीषण को भी यह अनुभव हुआ कि भगवान राम की कृपा से ही मुझे सन्त हनुमान जी के दर्शन हुए हैं। वह इस प्रकार कहता है कि

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।।

परिणाम यह हुआ कि हनुमान जी ने विभीषण को समझाया कि यदि तुम्हें प्रेम ही करना है और सेवा ही करनी है तो भगवान राम की करो, जिससे तुम्हारा परम कल्याण होगा। हनुमान जी ने कहा कि

सुनहु विभीषण प्रभु की रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।

परिणाम यह हुआ कि विभीषण लंका, महल, परिवार, पद, प्रतिष्ठा और रावण का त्याग करके भगवान राम की शरण में आकर राम की सेवा में लग गया। भाव यह है कि सन्त की कृपा के बिना जीवन में न भगवान की शरण में जा सकता है और ना ही भक्ति और सेवा कर सकता है।

कहने का भाव यह है कि इसी प्रकार से जब मनुष्य किसी सन्त या सद्गुरू से जुड़ जाता है और उनकी बात पर पूर्ण विश्वास करता है और अपने जीवन को भगवान राम की सेवा और भक्ति में लगा देता है तो उसके जीवन में सुख शान्ति की प्राप्ति होकर भक्ति और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।

यह सब सन्त और सद्गुरू की कृपा का फल होता है। सन्त की कृपा का आसरा लेकर जीवन को धन्य करता रहे, उसी में उसके मानव जीवन का परम कल्याण है।

ठा0 लाखन सिंह तोमर

सतगुरू आरती

मिल कीजे सतगुरू आरती । मिल कीजे ।

जिनकी चरण कमल रज सुन्दर, भव दुख सकल निबारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

दया से जिनकी द्वैत दूर हो, मन की माया टारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

वाणी अमृतमय सुन जिनकी, बुद्धि ब्रह्म को धारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

पाकर के विज्ञान ज्ञान को, पूर्ण शान्ति विस्तारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती । मिल कीजे।

गुरू अविनाशी घट–घट वाशी, दुनिया तुम्हें पुकारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

त्वदीयं वस्तु गुरूदेव
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज परमहंस

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज परमहंस

मुद्रक - वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, झांसी फोन नं. 0510-2332931